निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और अशोक के फूल

* डॉ. दिलशाद जीलानी

निबन्ध आधुनिक साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें व्यक्ति किसी भी प्रकार के वर्ण्य-विषय लेकर मुक्तभाव से अपने सब प्रकार के विचार प्रकट कर सकता है। निबन्धकार निबन्ध का ढाँचा प्राय: परिचित आधार पर ही खड़ा करता है। वह पाठक की विस्मृत किवदंतियों या पौराणिक कथा-प्रसंगों का हवाला देता चलता है। बीच-बीच में व्यंग्य विनोद कराता हुआ, परम्परा पर प्रहार करता, उसे चुनौती देता हुआ,अत्यन्त गम्भीर विषय को भी नितान्त सहज ढंग से कह जाता है। निबन्ध विषय प्रतिपादन नहीं करता वरन् लेखक के हृदय की प्रतिक्रिया मात्र होता है।[1] लेखक निर्बाध रूप से अपने मत, वाद व्यक्त कर पाने के लिए तथा अन्य विद्वानो के मतों का खण्डन-मण्डन करके अपनी ओर से सुनियोंजित निर्देश देने को स्वतन्त्र हुआ करता है। इतनी स्वतन्त्रताएँ और सुविधाएँ रहते हुए भी प्राय: सभी विद्वान एवँ आलोचक निबन्ध- लेखन को सर्वाधिक कठिन विधा एवं कार्य मानते हैं। अत्यधिक प्रतिभाशाली, अनवरत अभ्यासशील और सुलझे हुए विचारों वाला व्यक्ति ही अच्छे निबन्ध रच सकता है। इसके लिए व्यापक जीवन अनुभवों की भी अत्यधिक आवश्यकता हुआ करती है। जीवन में परिव्याप्त विविध सरणियों, रीतिनीतियों, परम्पराओं, परिवेशों और परिपार्श्वो से पूर्णतया परिचित रहना भी सफल निबन्धकार के लिए आवश्यक माना जाता है।

ऊपरवर्णित निबन्ध की सभी विशेषताओं का उत्कर्ष हमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में दिखाई पड़ता है। हिन्दी निबन्ध साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए द्विवेदी जी का योगदान अतुलनीय है। उनके द्वारा प्रतिपादित मानवतावादी दृष्टिकोण, समन्वयवादी दृष्टि, भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा, विषय- वैविध्य, प्रकृति-प्रेम एवं सरल-शिल्प इत्यादि ऐसे ही महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनके कारण द्विवेदी जी के निबन्ध हिन्दी निबन्ध साहित्यकी गौरवपूर्ण निधि कहलाने के अधिकारी हुए। आपके निबन्धों से हृदय की सरलता और सरसता, प्राचीन साहित्य और संस्कृति की शान और वैभव, विचारों की मौलिकता एवं शैली की रोचकता का सफल समन्वय दृष्टिगोचर होता है।[2]

द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में केवल हिन्दी परम्परा का ही योगदान नहीं है जो कबीर, सूर, तलसी, प्रसाद और प्रेमचन्द्र का स्मरण दिलाती है बल्कि उनके व्यक्तित्व के उन्नयन में कालिदास,श्री हर्ष, स्वयंभू तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा अन्य भारतीय मनीषियों का भी पर्याप्त योग रहा है। शान्ति- निकेतन में गुरूवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में रहने के कारण इनके भावों एवं विचारों पर मानव-धर्म का बोध तथा सांस्कृतिक विचारधारा का प्रभाव और भी अधिक गहराई के साथ पड़ा है। इस तरह द्विवेदी जी के भाव और विचार पूर्णतया भारतीय संस्कृति के वातावरण में पल्लवित हुए हैं।

आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व स्वयं अत्यन्त सरल रहा है। हंसते-हंसते ज्ञान की ऊँची बात सहज बनाकर इस प्रकार कह जाते थे कि सुनने वाले उसे अनजाने ही ग्रहण कर लेते थे। 'चढ़िए हाथी ज्ञान को सहज दुलीचा डारि' कबीर का यह कथन उन्हें न केवल प्रिय था बल्कि उनके जीवन और व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था। वे कहा करते थे कि बड़ा कलाकार ही सरल रेखा खींच सकता है।

ज्ञान जब आत्मस्थ हो जाता है तो उसका प्रकाशन सहज हुआ करता है। द्विवेदी का अपने से वय और प्रतिभा से छोटे विद्वानों और शिष्यों के प्रति व्यवहार मित्रवत् और अत्यन्त आत्मीय एवं परामर्शदाता की भाँति ही था। डा. नामवर सिंह ने उन्हें आकाशधर्मी गुरु की संज्ञा दी जिसके नीचे सारी वनस्पति राशि अपना स्वाभाविक विकास कर सकती है। वे आकाशधर्मी गुरु थे, हर पौधे को बढ़ने के लिए उन्मुक्तता देने के विश्वासी। यह उन्मुक्तता ही उनकी परम्परा का मूल स्वर है। लेकिन यह उन्मुक्ता जितनी सहज दिखती है उसे समझ पाना उतना सहज नहीं है।[3]

डा. बच्चन सिंह के अनुसार द्विवेदी जी ने पांडित्य अर्जित किया है किन्तु मनुष्यता भी उनमें कम नही है, फलस्परूप पांडित्य को सहजता की और ले जाना उनका स्वभाव है। इतिहास, पुराण, साहित्य आदि में गम्भीर से गम्भीर तथ्य उठाते हुए वे प्राय: उन्हें समसयिकता से जोड देते है। अत: उनके निबन्ध न तो गम्भीरता का तेवर छोडते है और न सहजता का बाना।[4]

आ. द्विवेदी की निबन्ध लेखन शैली और लेखक पाठक का रिश्ता अत्यन्त घनिष्ट और आत्मीय है। उनके शांतिनिकेतन के मित्र प्रो. मोहन लाल वाजपेयी उनके निबन्ध लेखन शैली तथा महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

यहां यह कहना असंगत नहीं होगा कि संस्कृत साहित्य की पृष्ठभूमि रहने के कारण द्विवेदी जी का निबन्ध साहित्य गहन गम्भीर है। इनकी निष्ठा भारत की पुरानी संस्कृति में है, पर साथ ही न्युनता का पूर्ण समावेश भी पाया जाता है। भारतीय दर्शन, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष साहित्य का इन्होने गहराई से अध्ययन किया है। इनके निबन्ध संग्रहो में आलोचनात्मक निबन्धों का बाहुल्य है।

द्विवेदी जी को मूलत: आलोचक माना जाता है तथा उनके आलोचनात्मक निबन्धों तथा साहित्य पर पर्याप्त लिखा गया है। हिन्दी के आधुनिक आलोचको में द्विवेदी उन इने-गिने मौलिक चिन्तको में है, जिन्होंने हिन्दी आलोचना को नए निष्कर्ष, गूढ़ दृष्टि, निजी अन्वेक्षण और गम्भीर अध्ययन दिया है।

वस्तुत: द्विवेदी जी ने विषय-वैविध्य द्वारा हिन्दी निबन्ध साहित्य को व्यापक तथा समृद्ध बनाने का महान कार्य किया। उन्होंने सामान्य से जटिलतम विषयों परसाधिकार लेखनी चलाई इनके कई निबन्धों के शीर्षक देखने में अत्यन्त-सामान्य प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी अद्वितीय प्रतिभा एवं चिन्तन की मौलिकता के संस्पर्श से वे निबन्ध विद्वानों के गम्भीर अध्ययन मनन की वस्तु बन गए हैं। द्विवेदी जी योजना बांधकर लिखने नहीं बैठते थे। वीणा के एक तार छू जाने पर जैसे पूरे तार झंकृत हो उठते है वैसे ही कोई बात द्विवेदी जी को छू जाती है, तब उनकी प्रतिभा उन्हे उकसाने लगती है और वे कलम उठाने पर विवश हो जाते थे तो बहुत सी बातें सहज ही फूटती चली जाती हैं। उनके विषय-

* सह. आचार्य, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

वैविध्य सम्बन्धी जयनाथ नलिन के विचार हैं-''विषय विविधता जितनी द्विवेदी जी में मिलती है, उतनी किसी अन्य आधुनिक व प्राचीन निबन्धकार में दृष्टिगोचर नहीं होती।''[5]

द्विवेदी जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से जो कुछ भी कहा है, उसमें मानव के सर्वांगीण विकास, चहुँमुखी उन्नति और मानवता की चरम परिपुष्टि का लक्ष्य ही प्रधान रहा है। उनके अनुसार साहित्य का लक्ष्य केवल वाग्विलास की साधना नहीं होना चाहिए अपितु उसे मनुष्यता के उन्नयन के लक्ष्य को सामने रखना है। उनके शब्दों में ''मै साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ जो वाग्यजाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परतुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु:खकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[6] इस प्रकार द्विवेदी जी का निबन्ध-साहित्य अत्यन्त विपुल, विविधमुखी और स्तरीय है। साहित्य, संस्कृति और भाषा की समस्याओं पर उन्होंने दर्जनों श्रेष्ठ निबन्ध लिखे और उनमें व्यक्तित्व की अमिट छाप लगा कर इतना रोचक और आह्लादक बना दिया कि अशोक के फूल, विचार और वितर्क, कल्पलता, मध्यकालीन धर्म साधना, कुटज आदि निबन्ध संग्रहो को आज हिन्दी निबन्ध साहित्य की अक्षय निधि समझा जाता है।

1948 में प्रकाशित अशोक के फूल साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। इस संग्रह को स्थूल रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- 1 व्यक्ति प्रधान, 2 विषय प्रधान।

व्यक्ति प्रधान निबन्धों में अशोक के फूल, बसन्त आ गया है, मेरी जन्तभूमि,क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है? आलोचना के स्वतन्त्रमान, आदि निबन्ध रखे जा सकते है जबकि शेष विषय प्रधान है। विषय प्रधान निबन्धों को विषय की दृष्टि से अनेक उप-भेदो में विभाजित किया जा सकता है। जैसे 1 सांस्कृतिक निबन्ध- भारत की सांस्कृतिक समस्या, भारतीय संस्कृति की देन 2 सैद्धान्तिक समीक्षा से सम्बन्धित जैसे साहित्यकारों का दायित्व, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य आदि 3 प्राचीन साहित्य सम्बन्धी- जैसे संस्कृत का साहित्य। विविध-भारतीय फलित, हमारी शिक्षा प्रणाली आदि।

व्यक्ति प्रधान निबन्धों में लेखक की कल्पना-शक्ति स्वच्छन्द रूप में सौन्दर्य एवँ चिन्तन की और अग्रसर हुई है इनमें विचार की उपेक्षा अनुभूति ही अधिक है इसीलिए इन्हें विशुद्ध साहित्यक निबन्धों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

द्विवेदी जी अपने निबन्धों के माध्यम से उसी साहित्य को श्रेष्ठ समझते हैं जिससे मनुष्य की शक्तियाँ बढ़े। सैकड़ों वर्षो की मानसिक गुलामी भारत से दूर हो।भारतीय युवकों का आत्म-विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।

उनके अनुसार वर्तमान समय जटिलता, अस्पष्टता, छदमों और मानवीय मूल्यों के ह्रास का है ''अत: हमारे साहित्य में आज ऐसे दृढ़ चेतन चरित्रों की कमी महसूस हो रही है, जो विपत्तियों की झंझा में पहाड़ के समान अटल बने रहते है, जुझने का अवसर पान पर सौ गुना उत्साहित हो जाते है और प्रलोभन के विशाल व्यूह में भी अपने कर्त्तव्य-पथ से तिल मात्र विचलित नहीं होते। आज हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो हमारे युवकों में मनुष्यता के लिए बलि होने की उमंग पैदा करे और अपने अधिकारों के लिए मिट जाने के लिए अंकुठ संचार करे।''[7]

द्विवेदी जी का सम्पूर्ण साहित्य मानव केन्द्रित है। वे स्पष्ट कहते हैं ''साहित्य का कारोबार मनुष्य के समुचे जीवन को लेकर है। साहित्य केवल बुद्धि-विलास नहीं है, वह जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा करके सजीव नहीं रह सकता। साहित्य के उपासक अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते। हम सारे बाह्य जगत को असुन्दर छोडकर सौन्दर्य की सुष्टि नहीं कर सकते।[8] साहित्य जीवन की गतिविधियों तथा संसार के स्पंदन से अछूता नहीं रह सकता। उसका अपना विषय बनाना और सप्रयोजन अभिव्यक्ति देना ही उसका मूल्य है। अन्यथा वह बेकार है।

अपने निबन्धों में द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के वैशिष्टय को रेखांकित करते है बल्कि उसके प्रति आधुनिक दृष्टि रखते हुए उसकी पुनर्व्याख्या भी करते है। रूढियों, अंधविश्वासों और मृत परम्पराओं का स्वीकार नहीं करते लेकिन साथ ही आधुनिक के प्रति उत्साह या फैशन के चलते उन मुल्यों को छोड़ने की भी सलाह भी नहीं देते जिन्हें मनुष्य ने अपने लंबे संघर्ष के बाद अर्जित किया है। इस सम्बन्ध में वे लिखते है पुरानी सड़ी रूढियों का मैं पक्षपाती नहीं हूँ। परन्तु संयम और निष्ठा पुरानी रूढियाँ नहीं हैं। वे मनुष्य के दीर्घ अभ्यास से उपलब्ध गुण हैं और दीर्घ अभ्यास से ही पाए जाते है।[9]

द्विवेदी जी साहित्य को साधन रूप में स्वीकारते हैं। साहित्य का साध्य अंतत: मनुष्य का अशेष, संपूर्ण कल्याण है। वे साहित्यकारों को लेखन के वास्तविक उद्देश्य से अवगत कराते हुए उन्हें समाज को ऐसा उत्साहवर्द्धक साहित्य देने की प्रेरण देते हैं जो देश की स्वतन्त्रता की सुदृढ़ता में तथा इसकी प्रगति में सहायक सिद्ध हो सके। साहित्यकारों को प्रेरित करते हुए कहते हैं-जो कुछ भी लिखो, उसे अपने महान् उद्देश्य के अनुकूल बनाकर लिखो। समुची मनुष्यता जिससे लाभान्वित हो, एक जाति दूसरी जाति से घृणा न करके प्रेम करे, कोई किसी का आश्रित न हो, कोई किसी से वंचित न हो। इस महान् उद्देश्य से ही हमारा साहित्य प्रणोदित होना चाहिए।[10] वे प्रकाशकों से भी अनुरोध करते है कि वे सुचिंतित योजना के अनुसार पुस्तकें प्रकाशित करें।[11] जिससे हमारा समाज पूर्ण लाभान्वित हो सके।

वे लेखकों को सचेत करते हुए लिखते हैं कि हमारा देश अधिकांशत: निरक्षर है। हमें ऐसे साहित्य की रचना करनी चाहिए जो प्रोढ़ों में नवीन चेतना का प्रकाश भर सके, उन्हें उनके कर्त्तव्यों से भली भांति परिचित कर सके। इस विषय में द्विवेदी जी अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किए हैं- ''हमें हिन्दी को एक ऐसी भाषा नहीं बना देना है जो सर्व साधारण के निकट अंग्रेजी ही की भांति दुर्बोध्य बनी रहे या संस्कृत कमी की भांति कुछ चुने हुए लोगों से शास्त्रार्थ-विचार की भाषा बन जाए। ऐसा करके तो हम निश्चित रूप से हिन्दी का अहित करेंगे। हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मामूली से मामूली जन हित को ऊपर उठा सके। हमें तो इस भाषा को इस योग्य बना देना है कि साधारण से साधारण मजदूर से लेकर अत्यन्त विकसित मस्तिष्क के बुद्धिजीवी के दिमाग में समान भाव से विहार कर सके।[12] द्विवेदी जी हिन्दी भाषा की विशिष्टता तथा इसे भारतवर्ष में स्थित करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा के अभिलाषी हैं। इस प्रकार भाषा- सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण अत्यन्त मौलिक, यथार्थपरक, स्वस्थ, सार्थक, लचीला और प्रासंगिक हैं।

द्विवेदी जी व्यक्तिवादी और दरबारी साहित्य की अनुपादेयता[13] प्रमाणित करते हुए ऐसे साहित्य के सर्जन पर बल दे रहे हैं जो मनुष्य समाज को रोग-शोक, दारिद्रय- अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है। उनके व्यंग्य का लक्ष्य ऐसे

साहित्य और साहित्यकार को निरूत्साहित कर देना है जो समूची मानवता के लिए कल्याण कारक नहीं है, जो एक जाति अथवा समाज को नजदीक न लाकर दूर हटाता है, जो मानव को मानव के शोषण से मुक्त नहीं करता, जो मनुष्य को मनुष्य नहीं बनाता, जो अन्त: और बाह्य सौन्दर्य सामंजस्य न करके मनुष्य का कल्पना-प्रवण और बुद्धि विलासी बनाता हैं, जो मनुष्य को अशिक्षा और कुशिक्षा से संघर्ष करना नहीं सिखलाता जो भय और ग्लानि का निर्मूलन नहीं करता, जो समूचे देश के मस्तिष्क से उत्पन्न जड़संस्कारों का निवारण नहीं करता, जो मनुष्य समाज को पशु-सामान्य धरातल से ऊपर नहीं उठता।'' 3 सारांश यह है कि द्विवेदी जी का साहित्य एक साधन है, और साध्य है मानवता का चरम-विकास। इस साध्य में अवरोध स्वरूप उपस्थित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति, विचार, और विश्वास परा उन्होंने बड़ी कलात्मकता से प्रहार कियें हैं। उसी कलात्मकता से जितनी कि एक धनुर्धर अपने लक्ष्य पर तीर मारता है। निश्चय ही आ. द्विवेदी जी के पास व्यंग्य का नुकीला तीर है जिसके प्रयोग की क्षमता में वे आधुनिक लेखकों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

फलत: द्विवेदी जी किसी देश या जाति की विशुद्ध संस्कृति जैसी कोई चीज नहीं मानते। भारतीय संस्कृति पर भी वे इसी दृष्टि से विचार करते हैं। अशोक के फूल शीर्षक में वे कहते हैं कि भारतवर्ष एक विचित्र देश है। इसे रवीन्द्रनाथ ने महामानव समुद्र कहा है। यहाँ असुर, आर्य, हूण, यक्ष, गंघर्व, न जाने कितनी मानव जातियाँ आई और एक दूसरे से मिल गई। जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्यतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है। जिसे हम आज का भारतवर्ष कहते हैं वह नाना जातियों, संस्कारों, धर्मो, रीति-रस्मों का जीवन्त समन्वय है।

अपने निबन्धों में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करके द्विवेदी जी ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' निबन्ध में वह प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली और आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली के मध्य समन्वय का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- योजनाओं के साँचें में मनुष्य को नहीं ढालना चाहिये। मनुष्य के आदर्श पर योजनाओं को मोड़ना चाहिये। इसी एक अर्थ में भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को गुरुकुल प्रणाली कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी का निबन्ध क्षेत्र अत्यन्त विशाल और व्यापक है। किन्तु कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ है जो उनके सभी निबन्धों में मिलती हैं। ये है- अगाध, पाण्डित्य, मनुष्य की महत्ता और भावानुकूल भाषा-शैली। द्विवेदीजी के जिस भी निबन्ध को लिया जाये, चाहे उसका प्रतिपाद्य कुछ भी हो पर उसमें इनका अगाध पाण्डित्य अवश्य मिलेगा। लेकिन उनमें पाण्डित्य का बोझ नहीं है। अशोक के फूल शीर्षक निबन्ध में वे लिखते है- पंडिताई भी एक बोझ है-जितनी ही भारी होती है उतनीही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। द्विवेदी जी अपने पांडित्य को सहज ढंग से व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता रखते है। दर्शन और चिन्तन की बहुत गंभीर और सुक्ष्म बातें वे बहुत सहज ढंग से कह जाते है। उनके निबन्धों में पांडित्य सहज निर्झर की तरह प्रवाहित होता है। कलम उठाते ही आत्मसात् किया हुआ ज्ञान बहने लगता है।

निष्कर्षत: द्विवेदी जी ने कुछ भी लिखा,वह स्तरीय और प्रांसगिक है। इनके द्वारा लिखे गए निबन्ध अत्यन्त सबल, विस्तृत, गहन और समृद्ध है जिसमें व्यावहारिकता, मौलिकता, सामयिकता और हमारी समृद्ध संस्कृति और इतिहास संबधी गहनता की छाप भी है। द्विवेदी जी के अनुसार यदि मनुष्य विद्याता की सर्वोत्तमकृति है तो साहित्य मनुष्य द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ कृति। मपनव स्नेह अथवा मानवतावादी दृष्टिकोण इनके निबन्ध साहित्य की की महत्त्वपूर्ण देन है। कल्याण के लिए इनके मन में आकांक्षा ही नहीं अपितु आतुरता एवं आकुलता भी है।

द्विवेदी जी की दृष्टि मूलत: सांस्कृतिक है। साहित्य के बाद उनके सबसे अधिक निबन्ध संस्कृति चिन्तन सम्बन्धी हैं। उनके अधिकांश निबन्धों में भारतीय संस्कृति के स्वरूप और उसकी शक्ति का विश्लेषण हुआ है। द्विवेदी जी में यह संस्कृति-प्रेम इतना गहन है कि उनकी शायद ही कोई रचना हो जिसमें संस्कृति के सम्बन्ध में उनके विचार व्यक्त न हुए हों। अशोक के फूल, मेरी जन्मभूमि, नयावर्ष आ गया,भारतीय संस्कृति की देन, भारतवर्ष की संस्कृतिक समस्या आदि निबन्ध तो मुख्य रूप से संस्कृति को ही विषय बनाकर लिखे गए हैं। 'प्रायश्चित की घड़ी' 'घर जोड़ने की माया', 'सावधानी की आवश्यकता', आदि व्यवहारिक विषयों पर लिखते है तो संस्कृति की छाप परिलक्षित होती है। यदि वे भारतीय फलित ज्योतिष,नया वर्ष आ गया, आदि पर विचार करते हैं तो भरतीय संस्कृति की अमिट छाया उनके विचारों को आवृत करती हुई दिखाई देती है। इतना ही नहीं उनके साहित्यिक, व्यवहारिक, एवं राष्ट्रीय निबन्धों में सबसे अधिक सांस्कृतिक तत्वों की ही भरभार दिखाई देती है। उनके भारतीय संस्कृति की देन, भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या आदि सांस्कृतिक निबन्ध का तो कहना ही क्या है। इस निबन्धों में तो सांस्कृतिक तत्व ताने-बाने के रूप में अनुस्युत हैं। इस प्रकार द्विवेदी जी के निबन्ध उनकी गहन अनुभुतियों के भंडार हैं, व्यापक एवम् संवेदनाओं के अक्षय स्त्रोत हैं, ऐतिहासिक खोजों के सुन्दर निदर्शन हैं, उर्वर प्रतिभा के नमूने हैं, स्वाधीन चिन्तन की अलौकिक उपज हैं, वैयक्तिक विचारों और भावों के असीम सागर हैं और साहित्यिक समस्याओं को समझाने हेतु अद्वितीय कोश हैं।

अंतत द्विवेदी जी की निबन्ध कला का पूर्ण रस-लाभ उन्हीं रसिकों के लिए सम्भव है जो प्राचीन संस्कृत-साहित्य और मध्य युगीन संत-साहित्य से कुछ अवगत हों। इनका पाण्डित्य जन जन की सहानुभूति और रूचि के निकट पड़ता है क्योकि उसकी जड़े हमारी लोक-सांस्कृति के अन्दर गहरी धंसी हुई हैं।

सन्दर्भ-

1. निबन्ध नवीनत-भूमिका पृष्ठ-3 2. साहित्यक निबन्ध : डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त पृष्ठ 392 3. दूसरी परम्परा की खोज: प्रो. नामवर सिंह 4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 696 5. हिन्दी निबन्धकार-जयनाथ नलिन, पृष्ठ 215 6. मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है- पृष्ठ 148 7. सावधानी की आवश्यकता पृष्ठ 39-40, 8. मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है पृष्ठ 164, 9. वही-158, 10. सावधानी कर आवश्यकता पृष्ठ 45, 11. साहित्यकारों का दायित्व पृष्ठ 144 12. कराची हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यिक परिषद् के सभापति-पद से दिया गया भाषण- अशोक के फूल निबन्ध संग्रह पृष्ठ 147-148 से उद्घृत। 13. आलोचना के स्वतन्त्र मान पृष्ठ 135